VOL- VIII ISSUE- XI NOVEMBER 2021 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.149 ISSN 2349-638x

संस्कृत नाटकों में नृपनीति के विविध आयाम – एक विवेचन

प्रिया राजपूत
आचार्य (संस्कृत साहित्य)
जगद्गुरु रामानन्दचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

जो या जैसा भी आस–पास के समाज, क्षेत्र में दिखाई देता है, कल्पनाशील तथा रचनाधर्मी लेखक उसे अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्यिक रूप प्रदान करता है और उस कलमकार की सृजना कहानी, कविता, नाटक आदि के रूप में मूर्तरूप ग्रहण करती है, जिसका अध्ययन करके सृहज्जन न केवल अलौकिक आनन्द से अभिभूत होते हैं अपितु साथ ही साथ तत्कालीन देश–काल परिस्थितियों में होने वाली विभिन्न परम्पराओं, रीतियो का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं। यद्यपि काव्य रूप की अभिव्यक्ति के लिए शृंगार व वीर रसों को मुख्य माना है और अन्य रसों को गौण तथापि सभी रसों का अल्प या अधिक समावेश काव्य रचना में हो ही जाता है। प्रेम प्रधान काव्यों का गद्य–पद्य दोनों विधाओं में प्रचुर मात्रा में लेखन कार्य होता आ रहा है और अत्यन्त सफल रहा है। संस्कृत के प्रेम प्रधान जग प्रसिद्ध नाटकों में नृपनीति को इंगित करती घटनाओं के रंग बिखरे हैं जो न केवल तत्कालीन राजव्यवस्था की व्याख्या करते हैं अपितु रचनाकार की सूक्ष्म दृष्टि का भी परिचय करवाते हैं। संस्कृत के नाटककारों में अग्रणी कालिदास की लेखनी से भी नृपनीति की व्यवस्था अछूती नहीं रही है। उनके विश्वप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान–शाकुन्तलम्' का नायक प्रेमी होने के साथ–साथ राजा के कर्त्तव्यों के प्रति सजग है, राज्य तंत्र और प्रजा को सम्भालने के प्रति भी पूरा सचेत दिखाई देता है। एक आदर्श राजा के रूप को कालिदास ने प्रस्तुत किया है। धर्म तथा न्याय के पथ पर अडिग रहता हुआ दुष्यन्त शासन व्यवस्था को सम्भालता है। अपने राज्य में वह दु:खियों के दु:ख दूर करने में सदैव तत्पर रहता है। उसकी दृष्टि में प्रजाहित ही राजा का परम कर्त्तव्य है। दुष्यन्त के प्रति कंचुकी का यह कथन राज कार्य का ही संकेत करता है–

भानु: सकृद् युक्त तुरंग एव,
रात्रिन्दिवं गन्धवह: प्रयाति।
शेष: सदैवाहित भूमि भार:
षष्ठांश वृत्तेरपि धर्म एष:।।[१]

कह सकते हैं कि कर्त्तव्य परायण राजा को क्षण मात्र का विश्राम नहीं है। यहीं पर तत्कालीन कर व्यवस्था का भी ज्ञान मिलता है कि उस समय कृषि, व्यापार, उद्योग आदि के उत्पादन का छठा भाग कर के रूप में राजा ग्रहण करता था और जन कल्याण कारी कार्यों में लगाता था। वर्ण और आश्रम व्यवस्था को सुचारू बनाए रखना उनकी रक्षा करना राजा का पुनीत कार्य था। राज्य तन्त्र में सर्वोपरि होने पर भी राजा उद्दण्ड नहीं था। धनमित्र नाम व्यापारी की मृत्यु हो जाने पर उसकी सम्पत्ति स्वयं ग्रहण नहीं करता अपितु व्यापारी की गर्भस्थ संतान को देने का आदेश देता है– संवाद–

प्रतीहारी–देव, इदानीमेव साकेतस्य श्रेष्ठिनो दुहिता निर्वृत– पंसुवना जायाऽस्य श्रूयते।
राजा– ननु गर्भ: पिन्र्यं रिक्थमर्हति। गच्छ, एवममात्यं ब्रूहि।[२]

ऐसे उदाहरण तत्कालीन राजाओं की त्यागभावना को दर्शाते हैं। राजदण्ड को धारण करने वाला राजा कुमार्ग गामियों को नियंत्रित करता था, उनकी कलह निपटाता था, प्रजा की रक्षा करता था और स्वयं कष्ट सहन कर लेता था परन्तु प्रजा पर आँच नहीं आने देता था।

नियमयसि कुमार्गप्रस्थितानात्तदण्ड:,
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय[३]

और भी उदाहरण देखिए–

स्वसुख निरमिभाष: खिद्यसे लोकहेतो:
प्रतिदिनमधवा ते वृत्तिरेवं विधैव,

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।।[४]

इस प्रकार कह सकते हैं कि कालिदास ने अपने इस नाटक के माध्यम से उस कालखण्ड में होने वाली राजतन्त्रात्मक व्यवस्था को समुचित और व्यवस्थित रूप में प्रकट किया है। इसके विपरीत एक अन्य नाटक प्रकरण भी बहुत प्रसिद्ध हुआ है। शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्'। इस नाटक का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि शूद्रक और कालिदास के काल विशेष का राजतंत्र दो विपरीत ध्रुवों पर खड़ा है। शूद्रक द्वारा वर्णित राजा स्वेच्छाचारी, धूर्त, पद का दुरुपयोग करने वाला तथा अनीति पर चलने वाला था। जन सामान्य सदैव भयाक्रान्त दिखाई देता था। कर व्यवस्था का उल्लेख इस नाटक में भी मिलता है, जैसा कि सप्तम अंक में चारूदत्त के कथन से लक्षित होता है–

"शुल्कमिव साधयन्तो मधुकर–पुरुषाः प्रविचरन्ति।"[५]

न्याय व्यवस्था में यद्यपि मन्त्रिपरिषद् अथवा न्यायाधिपति की नियुक्ति का वर्णन है परन्तु राजा निरंकुश था वह अपने अधिकारियों के परामर्श को नहीं मानता था। अन्तिम निर्णय करने का अधिकार राजा के ही हाथ में था जैसा कि वर्णन में आया। चारुदत्त विवाद में अधिकरणिक का कथन–

"निर्णये वयं प्रमाणं, शेषे तु राजा।"[६]

प्रशासनिक व्यवस्था में राजा का नियन्त्रण बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता। उसके अधीनस्थ अधिकारी व कर्मचारीगण केवल स्वार्थवश आजीविका हेतु राजकीय सेवा में जुड़े हुए थे। राजा के प्रति स्वामी–भक्ति या कर्त्तव्यपरायणता की भावना उन अधीनस्थों में नहीं थी। वे अपने राजा के प्रति विद्रोह करने वालों के भी सहायक बन जाते थे। शर्विलक का यह कथन इस बात को प्रमाणित करता है–

"ज्ञातीन् विरान् स्वभुज विक्रमलब्धवर्णान्
राजापमान कुपितांश्च नरेन्द्रभृत्यान्।
उर्त्तेजयामि सुहृदः .....[७]

शोधनक के द्वारा निरपराध होने पर भी चारुदत्त को यह सूचना दी जाती है कि राजा पालक ने तुम्हें सूली पर चढ़ाने का आदेश दिया है तब राजा की अन्यायकारी नीति और निष्ठुरता हेतु चारुदत्त कहता है–

अहो/ अविमृश्यकारी राजा पालकः। अथवा
इदृशे व्यवहाराग्नौ मन्त्रिभिः परिपातिताः।
स्थाने खलु महीपाला गच्छन्ति कृपणां दशाम्।।[८]

चारुदत्त के इस कथन के समर्थन में मनुस्मृति में आया यह श्लोक दण्ड विधान के विषय में उल्लेखनीय है–

"अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति।।"[९]

अध्ययन से ज्ञात होता है कि मृच्छकटिकम् के रचनाकाल राजनीतिक दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता। न्यायव्यवस्था में मनमानी और कपटता का समावेश था तो दूसरी ओर प्रशासनिक व्यवस्था में अवसरवादिता और पदों का दुरुपयोग सम्मिलित था।

इन दोनों कालिदास एवं शूद्रक के परवर्ती नाटककार भवभूति ने अपने विख्यात नाटक 'उत्तररामचरितम्' में तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था के चित्र खींचे हैं वे भी यहाँ उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। नाटक के प्रथम अंक में अष्टावक्र द्वारा राम को सम्बोधित करते हुए राजा के कर्त्तव्य के प्रति ध्यान आकर्षित कया गया है, जिसमें वह राम को कहते हैं–

"..... त्वं बाल एवासि नव च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशा यत्परमं धनं
वः।।"[१०]

जिसका भावार्थ है कि किसी राजा को प्रजा के कल्याण हेतु सदैव ध्यान रखना चाहिए। अपने राज्य की वस्तुस्थिति को भलीभाँति जानने–समझने के लिए अनवरत सचेत रहकर राज कार्य करना चाहिए। राजा राम लोकधारन हेतु पत्नी सीता का त्याग कर सकते हैं उनका स्पष्ट कथन है–

"स्नेहं, दयां च , सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति में व्यथा।।"[११]

इसी क्रम में राजधर्म की पालना में तत्पर राम के प्रति सीता का कथन भी महत्त्वपूर्ण है–

"दिष्ट्या अपरिहीनराजधर्मः खलु स राजा"[१२]

इनके अतिरिक्त भी अनेक सुभाषितों के माध्यम से नीति सम्मत राजधर्म को भवभूति ने व्याख्यायित किया है। विशाखदत्त–कृत 'मुद्राराक्षसम्' नाटक में राजधर्म का वर्णन किया गया है। 'अर्थशास्त्रम्' को आधार बनाकर राजा के अधिकारियों, गुणों, द्रव्य, उपाय आदि को विशाखदत्ते ने प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में चाणक्य का कथन उल्लेखनीय है–

"इह खल्वर्था शास्त्रकारास्त्रिविधां सिद्धिमुपवर्णयन्ति राजायतां सचिवाटातामुभयायतां चेति।"[१३]

राज्य व्यवस्था अथवा प्रशासनिक व्यवस्था के सफल संचालन के विषय में चन्द्रगुप्त द्वारा प्रस्तुत विचार दृष्ट्व्य है–

'राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्।"[१४]

उसके अनुसार धर्मपरायण राजा के लिए राज्य वास्तव में सुख के स्थान पर दु:ख ही देने वाला है। इसी प्रकार का भाव 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक में भी प्रस्तुत हुआ है, जिसमें दुष्यन्त कहता है–

"औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा,
क्लिश्नाति लब्ध परिपालनवृत्तिरेनम्।
नातिश्रमापनयनपाय तथा श्रमाय,
राज्यं स्वहस्तधृत दण्डमिवातपत्रम्।।"[१५]

संस्कृत वाङ्मय के आधुनिक काल में रचित 'भारतवजियनाटक' में भी राजधर्म का वर्णन हुआ है। यहाँ कहा गया है कि राजा को धर्म–अर्थ–काम का भली भाँति विभाजन करके शासन व्यवस्था करनी चाहिए, जिसमें ये तीनों परस्पर एक दूसरे को बाधित न करें। प्रजा पर आने वाले प्रत्येक संकट को दूर करने हेतु सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। यही एक राजा की नीति है, राजधर्म है–

"अर्थकमौ न धर्मेण प्रबोधत विचक्षण:
धर्मकामौ न चार्थेन न कामेनेतरेद् ह्यम्।
ईतावापत्तिकाले च प्रजानां पालनं चरेत्
व्यसनाद् भयतो रक्षेदेष धर्मो महीपते।।"[१६]

अन्त में उपसंहार स्वरूप प्राचीन भारत की राजव्यवस्था के आधार ग्रन्थ 'कौटिलीय–अर्थशास्त्रम्' में कौटिल्य का यह कथन समीचीन व युक्ति संगत है कि अपनी प्रजा के सुखी होने से ही राजा सुखी, जन सामान्य अर्थात् प्रजा के हित में राजा का हित है।

"प्रजासुखे सुखं राज्ञ: प्रजानां तु हित हितम्।"[१७]

इस प्रकार अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राजधर्म अथवा नृपनीति में चारित्रिक उदात्तता, प्रजावत्सलता, नैतिकता आदि का अनुकरणीय रूप नाटककारों द्वारा पर्याप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। लगभग दो हजार वर्षों की कालावधि में लिखे गये अलग–अलग नाटकों की विषय–वस्तु में राजा के कर्त्तव्यों के माध्यम से आग्रह प्रकट हुआ है कि प्रशासक प्रजारञ्जक होना चाहिए, लोकहित में पारंगत होना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

१. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – ५/२
२. वही, पृ. सं. ३५५
३. वही, ५/८
४. वही, ५/७
५. मृच्छकटिकम् – ७/१
६. वही, पृ.सं. ५६४
७. वही, ४/२६
८. वही, ९/४०
९. वही, पृ.सं. ५७०
१०. उत्तररामचरितम् – १/११
११. वही, १/१२
१२. वही, पृ.सं. १९८
१३. मुद्राराक्षसम्, पृ.सं. १७६
१४. वही, अंक–३
१५. अभिज्ञान शाकुंतलम्– ५/६
१६. भारतविजयनाटकम् – १/१८–१९
१७. अर्थशास्त्रम् प्रथम अधिकरण पृ.सं. ६४